

छत्रपति शिवाजी

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

बाल-साहित्य-माला—१

छत्रपति शिवाजी

(सरल और रोचक वीररस-पूर्ण जीवनी)

लेखक

गुर्ती सुब्रह्मण्य, एम० ए०, साहित्यरत्न



२००२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

चतुर्थ संस्करण :: मूल्य ।।)

मुद्रक:—के० पी० खत्री, इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लिमिटेड, प्रयाग ।

निवेदन

मुज़फ़्फरपुर सम्मेलन के अवसर पर श्री वियोगी हरि को उनके 'वीर-सतसई' नामक काव्य ग्रन्थ पर जो १२००) का मङ्गला-प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया था उसे उन्होंने अपनी ओर से सम्मेलन को दान कर दिया था और यह इच्छा प्रकट की थी कि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, पं० पद्मसिंह शर्मा और डाक्टर भगवानदास जी इन रुपयों को जिस कार्य में लगाना चाहें, उसमें व्यय करें। इन तीनों सज्जनों ने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि श्री वियोगी हरि जी की दी हुई १२००) की पूँजी वीररस-पूर्ण बाल-साहित्य के प्रकाशन में लगाई जाय और प्रकाशित पुस्तकों की आय से यह कार्य बराबर जारी रखा जाय। इसमें श्री वियोगी हरि जी की भी सम्मति थी। इस निर्णय की घोषणा सभी समाचार पत्रों में कर दी गई थी और लेखकों से इस सम्बन्ध में पुस्तकें आमंत्रित की गई थीं।

इसके उत्तर में कई एक पुस्तकें आईं और समय समय पर प्रकाशित होती रहीं। यह पुस्तक इस माला की छठी पुस्तक है। हम हर्ष के साथ आज इसका चतुर्थ संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

साहित्य मंत्री

विषय-सूची

१—वीरो की गाथा

यह संसार वीर पुरुषों के लिये बना हुआ है। संसार के इतिहास से यदि वीर पुरुषों की गाथा निकाल दी जाय, तो कुछ रह ही न जावे। क्या धर्म क्या राजनीति, क्या विद्या, क्या समाजसेवा, प्रत्येक क्षेत्र में वीर पुरुष उत्पन्न होकर अपना काम कर गये हैं।

साई धर्म के जन्मदाता ईसा संसार के बहुत बड़े धर्मवीर हो गये हैं। उनके अन्तिम समय का वर्णन पढ़-कर कौन ऐसा पाषाण-हृदय होगा जिसके आंसू न निकल आवें ? यहूदियों के न्यायाधीश ने उन्हें प्राणदण्ड दिया। उस समय की फांसी बड़ी भयंकर होती थी। अपराधी के सारे अंगों में कीलियाँ ठोंकी जाती थीं। ईसा को भी इसी प्रकार की शूली मिली थी। क्रास पर खड़े होकर ईसा ने कहा—'मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह मेरे शत्रुओं को क्षमा दे।' यह कह कर उसने बड़ी शान्ति के साथ अपने प्राण दे दिये। संसार के इतिहास में इससे बढ़कर धैर्य और साहस का उदाहरण और कहाँ मिल सकेगा। ईसा के इस तरह अपने जीवन का दान देने से

जो धर्म की प्रगति हुई वह उनके जीवित रहने से असंभव थी।

यूनान का सम्राट् अलक्षेन्द्र सबसे बड़ा युद्धवीर हो गया है। अरस्तू ऐसे महान् दार्शनिक से शिक्षा पाकर वह बड़ा ही राजनीतिज्ञ हो गया था। उसके जीवन का एक ही उद्देश्य था, और वह था संसार को जीतना। वह देश जीतते जीतते भारतवर्ष तक आया, और सिन्धु नदी के पास से वह घर की तरफ लौट गया। रास्ते में, बेबीलोन में, बत्तीस वर्ष की अवस्था में वह मर गया। मरते समय उसे बड़ा दुःख हुआ कि संसार में जीतने के लिये और देश न रह गये। मरते दम तक वह संसार का स्वप्न देखता रहा।

इटली के महाकवि दान्ते को यदि हम 'विद्यावीर या 'वीर कवि' कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। जिस दुःख और संकट में उसने कविता का निर्माण किया वह अकथनीय है। यौवनावस्था में उसने एक आठ वर्ष की लड़की बियेट्रिस को राह चलते सड़क पर देखा था। बस फिर क्या था। रात दिन वह उसी के विचार में तन्मय रहने लगा। उसने निश्चय कर लिया कि उस बियेट्रिस के ऊपर मैं एक महाकाव्य बनाऊँगा। थोड़े ही दिन बाद

वह एक बड़े अभियोग में फ़्लारेन्स के जेल में डाल दिया गया। जेल में भी उसे चैन नहीं मिलती थी। जेल की दीवारों में लिख लिख कर उसने 'डिवाइन कामेडी' के सात सर्ग खतम किये। कष्ट और संकट में रहते हुए भी उसने तीन भागों में अपना महाकाव्य पूरा किया। दान्ते का जीवन बियेट्रिस के लिये अर्पण था, और उसी के लिये उसने एक ऐसा महाकाव्य बनाया जो कि सदा उसके नाम को अमर रखेगा।

जिस प्रकार यूनान में अलत्तेन्द्र था, उसी प्रकार फ्रान्स में नेपोलियन हो गया है। वीरता और साहस में आधुनिक काल में उसका सानी शायद ही कोई मिले। मामूली, दीन कुल का लड़का एक दिन फ्रान्स का सम्राट् हो गया। आल्प्स ऐसे ऊँचे पर्वत को अकेले घोड़े पर चढ़कर लांघ गया। योरप के बड़े-बड़े राष्ट्र उसका लोहा मानते थे। अकेला कोई भी राष्ट्र उसे पराजित करने में समर्थ नहीं था, यदि उसके टक्कर का कोई भी वीर पुरुष उन दिनों था, तो वह नेलसन था। परन्तु नेलसन और नेपोलियन की वीरता में अन्तर है। नेलसन का नाम इंग्लैंड के महावीरों में लिया जाता है। पर नेपोलियन का स्थान संसार के महावीरों में है। जब लड़ाई में परास्त हो कर वह बन्दी बना कर अफ्रीका भेज दिया

गया, तब वह वेष बदल कर फिर लौट आया। जब जहाज के स्वामी ने उससे पूछा कि, तुम कौन हो तब उसने कहा कि मैं नेपोलियन हूँ। उसे विश्वास न हुआ और वह फ्रान्स चला आया। सेनानायक ने उसे देखते ही अपनी सेना उसके हवाले कर दी। बस अब क्या था! सौ दिन के लिए वह फिर सम्राट् बन बैठा। पर दुर्भाग्यवश वह फिर पकड़कर सेन्ट हेलेना में भेज दिया गया। बड़ी दयनीय अवस्था में उसकी मृत्यु हुई। सौ दिन के लिए सम्राट बनने में कितने साहस का काम है। ऐसे ही वीर पुरुष देश का सर ऊँचा उठाते हैं।

यदि संसार में वीर पुरुष हुये हैं, तो वीराङ्गनाओं की भी कमी नहीं है। फ्रान्स की 'जोन आफ आर्क' का उदाहरण पर्याप्त होगा। जोन फ्रान्स के मामूली कुल की एक सोलह वर्ष की लड़की थी। उन दिनों फ्रान्स और इंग्लैंड में युद्ध छिड़ा हुआ था। जोन फ्रान्स के राजा के पास गई और बोली "मुझे ईश्वर की प्रेरणा हुई है, कि तुम फ्रान्स के उबारने में समर्थ हो। अतः मैं फ्रान्स के लिये आई हूँ। मुझे आप आज्ञा दें तो मैं युद्ध स्थल में जाऊँ" राजा ने कहा—"यदि तुम ऐसी लड़कियाँ युद्धस्थल में जावें तो घर का कामकाज कौन करेगा?" जोन ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"घर

का कामकाज करने के लिये सैकड़ों लड़कियाँ हैं। मुझे दूसरा ही काम करना है"। राजा ने उसे युद्धक्षेत्र में जाने की आज्ञा दे दी। उसने अंग्रेज़ों को परास्त किया। पर उसी के देश वालों ने उसके साथ धोखा किया। उसे अंगरेजों के सुपुर्द कर दिया। उन्होंने उसको आग में जलाकर उसकी हत्या की। इस प्रकार एक सुन्दरी वीरांगना का अन्त हुआ।

इन सब वीरों के उदाहरण से यह स्पष्ट विदित होता है, कि एक विशेष गुण इन सब के जीवन में वर्तमान है, और वह है लगन। लगन एक ऐसा गुण है, कि जिसके पीछे वे सब चीज छोड़ सकते हैं। कितनी ही कठिनाइयाँ आ पड़ें, कितने ही बार वे अपने कार्य में असफल हों, अपनी लगन को वे छोड़ते नहीं। असफलता उन्हें निरुत्साहित नहीं करती, वरन् उनके साहस को और बढ़ाती है। वे एक चीज के लिये पागल से हो जाते हैं। चाहे जो कुछ हो उनकी दृष्टि उसी वस्तु की ओर रहती है। उसके लिये वे तन-मन-धन अर्पण कर देते हैं। उनके लिये सफलता, या असफला कोई चीज नहीं। कार्य होते जाना चाहिये। या तो वे शिखर पर ही पहुँच जायेंगे या गर्त ही में जा गिरेंगे। धरातल पर उनके लिये कोई स्थान नहीं।

२—जन्म और बालकाल

भारतवर्ष को 'वीरसू' 'वीर जननी' आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। भारतवर्ष में असंख्य वीर हो गये हैं। कर्ण ऐसे दानवीर, युधिष्ठिर ऐसे सत्यवीर, भीम ऐसे बलवीर, और अर्जुन ऐसे युद्धवीर, अपना सानी नहीं रखते थे। भगवान् बुद्ध दया में संसार के सब वीरों से बढ़ गये थे। प्राणि-मात्र के दुःख को देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो गया था। अहिंसा का मन्त्र उन्होंने सारे संसार के कानों में फूंक दिया। उस दयावीर का इतना प्रभाव पड़ा, कि बुद्धधर्म के अनुयायियों के बराबर संसार में किसी भी धर्म के अनुयायी न रह गये। महाराणा प्रताप सिंह अपनी एक आन पर अकबर से पचीस वर्ष तक लड़ते रहे, और कभी सर नहीं झुकाया गुरु गोविन्द सिंह का भी जीवन मुगलों से युद्ध करते ही बीता।

× × ×

मरहठा जाति की उत्पत्ति युद्ध में ही हुई, और मरहठों का जीवन सदा लड़ने झगड़ने ही में बीता। गरीबी ने तथा मुगलों के आतंक ने उन्हें ऐसा बना

दिया था। इनमें देशप्रेम तथा जातिप्रेम के गुण बहुत अधिक मात्रा में वर्तमान थे। औरङ्गजेब के अन्तिम समय में इन मरहठों ने बहुत बड़ा जोर पकड़ा। अन्त समय तक वे उसे बहुत कष्ट देते रहे।

इन्हीं में शाहजी या शहाजी भोंसले एक बड़े पराक्रमी पुरुष हो गये हैं। इन्होंने बीजापुर दरबार में नौकरी कर ली थी। इनकी पत्नी का नाम जीजीबाई था। इनको दूसरी पत्नी तुकाबाई से, सन् १६३० में वेंका जी उत्पन्न हुआ था। शाहजी का सब से बड़ा लड़का संभाजी सन् १६२३ ई० में पैदा हुआ। शाहजी का इस पर बड़ा प्रेम था। सन् १६५३ ई० में कनकगिरि के युद्ध में इसकी मृत्यु हो गई।

जिस समय दिल्ली के बादशाह जहाँगीर की मृत्यु हो चुकी थी, और शाहजहां तख़्तनशीन हुआ था, इब्राहीम आदिलशाह को मरे थोड़े ही दिन बीते थे, उसी समय सन् १६२७ ईसवी के मई महीने में, पूने से पचास मील उत्तर शिवनेरी गढ़ में हमारे चरित्रनायक शिवाजी का जन्म हुआ। जीजीबाई ने पुत्र के लिये गढ़ की शिवाई देवी की जो अर्चना की थी, उसी के कारण इनका नाम 'शिवाजी' रखा गया।

किसी भी पुरुष के बड़े बनने में माता का बड़ा हाथ

रहता है। जितने भी महापुरुष हुये हैं वे सब बड़े मातृ-भक्त हो गये हैं। नेपोलियन, अलक्षेन्द्र आदि को माता से जितना उत्साह मिला है उतना और किसी से मिलना असंभव था। उनके लिये माता को जितना कष्ट था उससे अधिक उसका प्रोत्साहन था। महाकवि ग्रे की माता केवल उसी के लिये जीवित थी। यहाँ तक कि अपने पुत्र के लिये उसने पति को भी त्याग दिया। शिवाजी का भी अपनी माता के प्रति अगाध प्रेम था। शाहजी ने जब दूसरा विवाह कर लिया तब जीजाबाई का जीवन दूभर हो गया। उसके जीवन में यदि कोई सहारा था तो वह था शिवाजी का प्रेम। कोई भी कार्य करने को यदि शिवाजी को इच्छा होती तो वे माता से आज्ञा ले लेते थे। माता के पास बैठकर घंटों वे वीरपुरुषों की कथाएँ सुना करते थे।

शिवाजी के जीवन में तथा अकबर बादशाह के जीवन में बहुत समानता है। दोनों का जन्म एक मामूली स्थान में हुआ था। अकबर अमरकोट में पैदा हुआ था और शिवाजी शिवनेरी के किले में। बाल्यावस्था में दोनों को अपने पिता के दर्शन नहीं हुए थे। बाल्यावस्था में दोनों ने संकट सहे। वे दोनों दयालु, वीर, और प्रजा-पालक थे। अकबर बादशाह से शिवाजी की तुलना करने

से यही विदित होता है कि शिवाजी कोई मामूली श्रेणी के पुरुष नहीं थे वरन् एक महान् पुरुष थे।

माता के लालन-पालन में शिवा जी की बाल्यावस्था के चौदह वर्ष बीत गये। वे युद्ध कला में बहुत दक्ष हो गये। स्वभाव के बहुत बलिष्ठ और चंचल थे। हाथी घोड़े आदि की सवारी उन्होंने सीख ली। बड़ों का सदा आदर करते थे और बुद्धिमान पुरुषों की कभी अवहेलना नहीं करते थे।

शाह जी के परम मित्र मुरारपंत ने एक दिन बीजापुर बादशाह आदिलशाह से शिवाजी की बहुत तारीफ़ की। यह सुनकर ऐसे गुणी व्यक्ति को देखने को बादशाह को बड़ी अभिलाषा हुई और उन्होंने मुरारपंत को आज्ञा दी कि वे शिवाजी को अपने साथ लेते आवें। जब वे शिवाजी के पास गये तो उन्होंने जवाब दिया—"बादशाह बड़ा अज्ञानी है। उसको सलाम करना, उसकी चापलूसी करना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। उससे बात करने में मुझे बड़ा दुख होगा। उसके दर्बार में हिन्दूधर्म की जो निन्दा होती है वह मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगती। रास्ते चलते जो गोवध होता है वह मुझसे देखा नहीं जाता। अमीर-उमरावों के घर जाना और

उनसे परिचय प्राप्त करना मुझे बिलकुल नहीं भाता। मुझे आप क्षमा करें।"

यह सुनकर मुरारपंत ने कहा—"तुम्हारे पिता ने अली आदिलशाह की सेवा करके ही इस वैभव को प्राप्त किया है। तुम्हें उनका इस प्रकार तिरस्कार करना उचित नहीं। बड़ों की आज्ञा सदा माननीय होती है।"

शिवाजी के मित्रों ने उन्हें समझाया। जीजीबाई ने भी उन्हें शिक्षा दी। स्वयं शाहजी ने बुलाकर समझाया—"अपने धर्म की रक्षा करते हुए भी तुम बादशाह से मिल सकते हो। समय के अनुकूल रह कर ही हम लोगों ने इतना वैभव प्राप्त किया है। इसलिये तुम्हें हठ नहीं करना चाहिए।" यह सुनकर शिवाजी ने उत्तर दिया—"मुझे पिता की आज्ञा शिरोधार्य है पर मुझसे देवता और ब्राह्मणों की निन्दा तथा गोवध देखा नहीं जायगा।"

बहुत कहने सुनने पर एक दिन शिवाजी बादशाह के दरबार में गये। दरबार में जमीन में हाथ टेककर मुजरा करने का नियम था। पर शिवाजी केवल सलाम करके पिता के पास जा बैठे। बादशाह ने मुरारपंत से पूछा—'क्या यही बालक शाहजी का पुत्र है।' मुरारपंत ने कहा 'हां'। उन्होंने बादशाह को समझाया कि लड़का

दरबार के नियमों को नहीं जानता। बादशाह ने प्रसन्न होकर उन्हें हीरे, जवाहरात, वस्त्र आदि प्रदान किये।

इसके बाद से शिवाजी अकसर दरबार में जाते थे, पर वे खाली सलाम कर अपनी जगह पर बैठ जाते थे। यह देखकर बादशाह को संदेह हुआ। एक दिन शिवाजी को बुलाकर पूछा। शिवाजी ने जिस चतुरता के साथ उत्तर दिया वह ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा—"मुझे रोज़ मुजरा करने के लिये कहा जाता है पर मैं जब दरबार में आता हूँ तो भूल जाता हूँ। दूसरी बात यह है कि आप और मेरे पिता एक से दीखते हैं। मुझे यह पता नहीं चलता कि आप कौन हैं? इसी लिये मैं दरबार के नियमों का पालन नहीं कर पाता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें।" यह जवाब सुनकर बादशाह हँसने लगा।

दरबार में जाते समय रास्ते में कसाइयों की दूकान पड़ती थी। वहाँ सदा बकरे आदि कटते थे और खुले आम मदिरा-मांस बिकता था। एक दिन शिवाजी ने एक आदमी को गाय का वध करने की तैयारी करते हुए देखा। वे उस आदमी के पीछे दौड़े और उसे मार कर उन्होंने उस गाय को छुड़ा लिया। इससे खूब तहलका मचा। पर बात दबा दी गई और बादशाह ने भी इस ओर ध्यान न दिया।

नित्य प्रति के गोवध के देखने से शिवाजी का मन दरबार जाने से उचट गया। उन्होंने एक दिन अपने पिता से कहा—"आप बादशाह के नौकर हैं। आपका रोज़ दरबार जाना उचित है। मुझसे गोवध देखा नहीं जाता। मुझे आप कल से न ले जाइये। गोवध जब तक न बन्द होगा तब तक मैं दरबार में नहीं जा सकता।"

यह सुनकर शाहजी निरुत्तर हो गये। अकेले दरबार में कैसे जाते! मीर जुमला नामक सरदार से उन्होंने सलाह ली। उसने कहा—कल हम दोनों दरबार में चलेंगे। जैसा बादशाह का रुख़ रहेगा वैसी बात करेंगे।

दूसरे दिन दोनों दरबार में गये। मीर जुमला ने बादशाह को प्रसन्न देखकर कहा—"परवरदिगार, आप सारी प्रजा के माँ-बाप हैं। आपके लिये हिन्दू और मुसलमान प्रजा दोनों बराबर हैं। गोवध हिन्दू धर्म में बड़ा पाप समझा जाता है। आपके राजमार्ग में गोमांस की कई दुकानें हैं, और नित्य गोवध होता है। यह देखकर हिन्दुओं को दुःख होता है। शाहजी का पुत्र शिवाजी इसी कारण से आज दरबार में नहीं आया। आप इस बात पर अपना ध्यान अवश्य दें।" बादशाह ने यह सुनकर आज्ञा निकलवाई कि कोई शहर में गोवध न करे। शहर से दूर कसाईखाना बनवा दिया गया। इस आज्ञा

के बाद शिवाजी अपने पिता के साथ फिर से दरबार में जाने लगे।

एक दिन एक कसाई गोमांस लेकर शहर में बेचने आया। शिवाजी अपने मित्रों के साथ उसी तरफ से जा निकले। उ.की नजर उस पर जा पड़ी। उन्होंने उसकी तलवार हाथ में लेकर उसका शिरच्छेद कर दिया। उसके मरने पर उसकी स्त्री ने बादशाह से शिकायत की। बादशाह ने कहा—"शिवाजी ने जो कुछ किया वह बिलकुल ठीक है। शहर में मांस बेचना मना है। तुम्हारे मालिक ने इस हुक्म को नहीं माना। इसकी उसने काफी सज़ा पाई।" यह कहकर उसके दफ़नाने के लिये चार रुपये दिये। इस बात की हलचल सारे राज्य में फैल गई और कई दिन तक बड़ी सनसनी रही।

इस खबर को सुनकर शाहजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने शिवाजी को अपने पास बुलाकर जीजीबाई के सामने उपदेश दिया—"तुम अभी बहुत छोटे हो, तुमको अभी संसार का अनुभव नहीं है। जो तबियत में आवे वही नहीं करना चाहिये। यदि तुमको दरबार में नौकरी करनी है तो इस तरह के अभिमान से काम न चलेगा। समझ बूझ कर काम करना चाहिये।" शिवाजी ने शिक्षा को चुपचाप सुन लिया।

इसके बाद शाहजी ने शिवाजी को दूर रखना ही उचित समझा। उन्होंने दादाजी कोणदेव के साथ शिवाजी और जीजीबाई को पूना भेज दिया।

इससे विदित होता है कि उनके हृदय में धर्मरक्षा के भाव बचपन से ही विद्यामान थे। पर यदि धर्मरक्षा का अर्थ अपने धर्म के सामने दूसरों के धर्म को घृणा की दृष्टि से देखना हो तो शिवाजी इस प्रकार के धर्मरक्षक न थे। उनका सिद्धान्त था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के आचरण में पूरी स्वतन्त्रता है। इसी सिद्धान्त को वे बालकाल से लेकर आजीवन निबाहते रहे।

३—स्वराज्य-स्थापना का संकल्प

पूना में आने पर शिवाजी के शिक्षण का भार दादाजी कोंडदेव पर छोड़ा गया। दादाजी बहुत ही स्वामिभक्त और ईमानदार थे। साथ ही साथ आप एक योग्य शिक्षक भी थे। उन्होंने शिवाजी को युद्धकला में अच्छी शिक्षा दी। शरीर बलवान् और पुष्ट होने के लिये नयी-नयी कसरत और व्यायाम सिखाये। इसके अलावा उनको विद्याभ्यास भी कराया। उन्होंने उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेज़ी की भी शिक्षा दी। गाना, बजाना, पुराण, धर्मशास्त्र, वेद, महाभारत, रामायण, राजनीति, स्मृति, ज्योतिष

आदि कई विषय पढ़ाये। घोड़े की सवारी, तलवार चलाने आदि में शिवाजी को दक्ष कर दिया।

शिवाजी जब से पूना में आये तब से उनका मन पिता की गुलामी के कारण व्यथित रहता था। वे सोचते थे कि पिता का बीजापुर के बादशाह से जीविका प्राप्त करना निन्दनीय है। अपने पराक्रम से स्वतन्त्रता के साथ धन प्राप्त करना अधिक अच्छा है। भोंसले के कुल में उत्पन्न होना तभी सार्थक है जब मैं स्वयं कुछ उपार्जित करूँ। अपने से कमा कर खाने में ही पुरुषार्थ है। किन्तु यह तभी संभव हो सकता है जब मैं एक स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना करूँ।

जब ये बातें दादा जी के कानों में पड़ीं तब उन्होंने शिवाजी को बुलाकर इस प्रकार उपदेश दिया—"तुमने जो बात मन में ठानी है वह असंभव है। सारा देश मुसलमानों के हाथ में है। अपने बाप की संपत्ति की रक्षा करने में ही तुम्हारा कल्याण है। यदि यवनों से विरोध करोगे तो जो कुछ तुम्हारे पास है वह भी चला जायगा और संकट में पड़ जाओगे। तुम्हारे पिता कोई कम पराक्रमी नहीं हैं। पर जब उन्होंने देखा कि मुसलमान ज्यादा प्रबल है तब उनके यहाँ नौकरी कर ली। अतः तुम स्वराज्य-स्थापना का विचार छोड़ दो।"

इस उपदेश को सुनकर महात्मा गान्धी के जीवन की एक घटना याद आती है। यह उनके बाल्यकाल की घटना है। उस समय वे स्कूल में पढ़ते थे। इन्स्पेक्टर साहब के आने का दिन था। मास्टर साहब ने सबको ताकीद कर दी थी कि सब तैयार रहें। निदान जब इन्स्पेक्टर साहब निरीक्षण करते हुए गान्धी जी की कक्षा में आये तब उन्होंने गान्धी जी से कुछ प्रश्न किये। गान्धी ज़ी उत्तर न दे सके। मास्टर साहब ने कान में कुछ कहा। फिर भी मोहनदास चुप रहे। मास्टर साहब को बड़ा क्रोध आया। जब इन्स्पेक्टर साहब चले गये तब उन्होंने छड़ी मँगाकर गान्धी जी को खूब पीटा। गान्धी जी ने कहा "मैं सत्य से विचलित नहीं हो सकता था। जब मैं किसी वस्तु को जानता नहीं तब किसी को प्रसन्न करने के लिये झूठ क्यों बोलूँ?" इस सत्य से गान्धी जी को दण्ड रूप में समुचित पुरस्कार मिला। पर गान्धी जी आज विश्ववन्द्य महात्मा हैं।

दादाजी पुरानी लीक के अनुगामी थे। उनको इस बात का क्या पता था कि मैं जिसको उपदेश दे रहा हूँ वह किसी दिन मुझसे बढ़कर हो जायगा? दादाजी कोंडदेव केवल कोंडदेव ही रह गये पर वह अठारह वर्ष का बालक शिवाजी छत्रपति शिवाजी हो गया।

इसके बाद शिवाजी ने दृढ़ संकल्प करके स्वराज्य-स्थापना की ओर ध्यान दिया। उन्होंने निश्चय किया कि सबसे पहले बीजापुर में ही हलचल की जाय। दादाजी को जब खबर लगी तब उन्होंने फिर से शिवाजी को समझाया। शिवाजी ने उनकी बात को एक कान से सुन दूसरे कान से निकाल दिया।

उन्नीस वर्ष की अवस्था में शिवाजी ने बीजापुर सरकार के हाथ से तोरण का किला छीन लिया। उसी वर्ष अर्थात् सन् १६४६ ई० में राजगढ़ का किला जीत लिया। सन् १६४७ ई० में पुरंदर और कल्याण के दो किले और जीत लिये। यह जीत शिवाजी के लिए बड़े महत्व की हुई।

शिवाजी को इस प्रकार हलचल मचाते हुए देखकर बादशाह के मन में सन्देह हुआ कि हो न हो शाहजी की सलाह से यह सब काम हो रहा है। शाहजी इस समय कर्नाटक में थे। बादशाह ने शाहजी को एक पत्र लिखा कि आपके हमारे यहाँ नौकरी करते हुए आपका पुत्र बीजापुर राज्य में हलचल मचा रहा है। आप या तो उसे मना करें; नहीं तो आपकी जागीर छीन ली जायगी। शाहजी ने उत्तर दिया—"शिवाजी मेरा पुत्र ज़रूर है, पर वह मेरी आज्ञा नहीं मानता। वह बिगड़ गया है।

उसका इलाज मेरे पास कुछ नहीं है। मैं हुज़ूर का एकमात्र नौकर हूँ। यदि मेरा कसूर हो तो आप जो चाहें सो दण्ड दे सकते हैं। आप शिवाजी को जीतेजी पकड़ लावें या जो तबीयत में आवे सो करें मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं है।"

इस प्रकार शाहजी का पत्र आने पर भी बादशाह को विश्वास न हुआ। उसने अपने सरदार मुस्तफाखाँ को जो कि उस समय कर्नाटक गया था, एक गुप्त हुक्म शाहजी को पकड़ लाने के लिये भेजा। उसने यह काम बाबा घोरपोडे को सौंप दिया। घोरपोडे बड़े संकट में पड़ा। शाहजी ऐसे वीर को पकड़ना कोई खेल न था। जिसने मुग़लों के छक्के छुड़ा दिए थे, उसको घोरपोडे ऐसे सरदार कैसे पकड़ सकते थे। घोरपोडे ने एक चाल चली। उसने शाहजी को अपने यहां निमन्त्रित किया। जब निमन्त्रण स्वीकार कर शाहजी उसके घर गये तब वह अपना घर दिखाने के बहाने एक कोठरी के अन्दर ले गया। यह कोठरी बिलकुल अन्धेरी थी और शाहजी के उस में जाते ही हथियार बन्द सिपाहियों ने उन्हें कैद कर लिया। इसके बाद उसने उन्हें बीजापुर भेज दिया।

बादशाह ने बीजापुर के कैदखाने से शाहजी द्वारा शिवाजी को एक पत्र लिखवाया। उसमें यह आज्ञा थी

कि तुम बीजापुर चले आओ और जितने किले जीते हैं उन्हें छोड़ दो। तुम्हारी वजह से बादशाह हम लोगों पर बहुत नाराज़ हैं। शिवाजी को जब पत्र मिला तब वे सोच में पड़ गये। उनको सोच में देखकर उनकी पत्नी सईबाई ने कारण पूछा। उन्होंने बता दिया। तब उसने कहा, "जहाँ अनिष्ट की संभावना है वहाँ पिता की भी आज्ञा माननीय नहीं है।" उनकी माता ने भी वही सलाह दी। तब उन्होंने इस आशय का पत्र लिखा— "मेरे बीजापुर में आने से कोई लाभ नहीं है। मैं किले छोड़ने के लिये तैयार नहीं हूँ। आपकी जो इच्छा हो सो कीजिये।" इस पत्र के पाने पर भी बादशाह को विश्वास न हुआ और उसने शाहजी को नज़रबन्द कर दिया।

शिवाजी को जब पिता के कैद होने की खबर मिली तब वे बहुत घबराये। मातृभक्ति के साथ शिवाजी में पितृभक्ति भी असीम थी। सच्चे पुरुष की ऐसे ही समय परीक्षा होती है। एक ओर पिता का प्रेम था और दूसरी ओर सिद्धान्त की बात थी। आखिरकार एक उपाय निकल आया।

शिवाजी ने बीजापुर सरकार से तो युद्ध किया पर वे अभीतक मुग़लों से छेड़छाड़ नहीं करते थे। अतएव

उन्होंने शाहजहाँ के पास एक पत्र भेजा कि बीजापुर सरकार ने हमारे पिताजी को कैद कर लिया है। उनको छुड़ाने के लिये आप कोशिश करें। मैं आपके यहाँ नौकरी करने के लिये तैयार हूँ।

शाहजहाँ ने बीजापुर सरकार के पास शाहजी को छोड़ने के लिये एक पत्र भेजा। आदिलशाह की हिम्मत न थी कि शाहजहाँ की आज्ञा का विरोध करता। उसने सन् १६५३ ई० में शाहजी को कर्नाटक जाने की आज्ञा दे दी।

शिवाजी ने इस प्रकार अपनी पितृभक्ति निबाही। आगे चलकर उन्होंने घोरपोडे को अपने हाथ से मारकर पिता के कष्ट का बदला चुकाया। संसार के इतिहास में पितृभक्ति के ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलेंगे।

४—अफजलखाँ से भेट

शिवाजी ने जिस स्वराज्य-स्थापना का स्वप्न देखा था उसको पूरा करना उनके लिए एक कर्त्तव्य-सा हो गया। वे दिन रात—इसी चिन्ता में रहते थे। महापुरुषों को जब एक धुन लग जाती है तो वे उसी में लवलीन

रहते हैं। उनको संसार के अन्य कार्यों की ओर ध्यान देने के लिये समय ही नहीं रहता।

शाहजी के कैद से छूटने के बाद शिवाजी से मुग़ल बादशाह ने अपने वचन को पूरा करने के लिये कहा। शिवाजी टालते रहे। बीजापुर सरकार को परेशान कर उनके किले पर किले जीतते रहे। सन् १६५७ ई० में शिवाजी ने औरङ्गजेब को एक पत्र भेजा कि मैंने अपने पास बहुत से घुड़सवार एकत्रित किये हैं। आपको जब कभी सहायता की आवश्यकता हो तो मुझे सूचित करें। आप मुझे दक्षिण के देशों की रक्षा का भार सौंप दें। मुझे जो वंश-परंपरा-गत अधिकार मिले हैं उसे आप जारी रखने की कृपा करें।

इस पत्र को पाते ही औरङ्गजेब जरा घबरा उठा उसने देखा कि एक मामूली-सा सिपाही इतना परेशान कर रहा है। खैर, करता क्या? उसने शिवाजी को मिला रखना ही उचित समझा। इससे शिवाजी का हौसला बढ़ गया। उसी वर्ष सईबाई से शिवाजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम सम्भाजी रखा गया।

अली आदिलशाह शिवाजी की हरकतों से बहुत नाराज़ हो गया। बेगम साहबा ने यह हुक्म निकाल दिया कि जो कोई शिवाजी को जीतेजी पकड़ लावेगा वह

इनाम पावेगा। एक सभा में जब यह प्रस्ताव रखा गया तब अफजलखाँ नाम का एक सरदार उठकर बो ।—"जहाँपनाह, मुझे शिवाजी को पकड़ लाने की आज्ञा दें और मैं उसको जीताजी पकड़ कर आपके सिंहासन में बाँध दूँगा। मेरे डर से शिवाजी काँप उठेगा।" यह सुनकर बेगम साहबा बहुत खुश हुईं और बारह हजार सेना घुड़सवार और हाथियों को साथ देकर अफजलखाँ को रवाना किया।

शिवाजी को ज्योंहीं खबर लगी कि अफजलखाँ हमको पकड़ने आ रहा है त्योंही उन्होंने प्रतापगढ़ पर जाकर ठहरने का निश्चय किया। इस अनिष्ट को दूर करने का उपाय वे वहाँ रातदिन सोचते रहे। अफजलखाँ की सेना प्रबल है। उससे यदि युद्ध किया जाय तो पराजय निश्चित है। ऐसे प्रबल शत्रु का सामना करना बहुत कठिन है। यदि उससे सन्धि कर ली जाय तो स्वराज्य की स्थापना असंभव है। अन्त में उन्होंने इस प्रकार का सन्देश भेजा—"आप ऐसे बली और शूर का सामना करना मेरी हिम्मत के बाहर है। जिस तरह हो सके उस तरह बीजापुर सरकार से मेरी सन्धि कराने को कोशिश करें। मैंने आदिलशाह का बहुत बड़ा गुनाह किया है। मुझे क्षमा मिलना बहुत कठिन है। यदि

आप कोशिश करें तो मैं क्षमा किया जा सकता हूँ। आप यदि मेरे ऊपर कृपा करेंगे तो मैं जन्म भर आपका एहसान मानूँगा।"

जब अफजलखाँ को यह सन्देश मिला तब उसे शिवाजी की मित्रता में सच्चाई मालूम होने लगी उसको शिवाजी की चतुरता का कुछ भी ख्याल न रहा। उसने अपने दूत कृष्णाजी भाष्कर को यह कह कर भेजा—"आपके पिता शाहजी और आप में हम कोई अन्तर नहीं मानते। बादशाह की कृपा आप के पिता की तरह आप पर भी है।"

शिवाजी ने दूत के आते ही उसका समुचित आदर सत्कार किया। खाँ साहब का सन्देश सुनकर अपनी कृतज्ञता भी प्रकट की। जब रात हुई और सब लोग सो गये तब शिवाजी कृष्णाजी को उठाकर बोले—"आपको अपनी जाति और धर्म का अभिमान अवश्य ही होगा। हम भी केवल स्वधर्म रक्षा और स्वराज्य-स्थापन के निमित्त लड़ रहें हैं। आप बादशाह के नौकर जरूर हैं पर फिर भी आप को जाति और धर्म की रक्षा का ख्याल अवश्य ही होगा।" जब इस प्रकार शिवाजी ने कृष्णाजी की बड़ाई की तब उन्होंने कहा—"खाँ साहब का वास्तविक उद्देश्य आपको पकड़ कर बीजापुर

ले जाने का है। वह आपको विश्वास दिलाकर भेंट करने के लिये बुलावेगा।" शिवाजी यह सुनकर सोने चले गये।

शिवाजी ने अपने दूत गोपीनाथ पन्त को अफ़जलखाँ के पास भेजा। साथ ही यह सन्देश कहलवाया कि मुझे स्वयं आप से भेंट करने के लिये आना उचित है। पर मुझे आपके प्रताप का बड़ा भय है। इसलिए हम चाहते हैं कि आप हीं मुझसे भेंट करने आवें। एक आध सरदार को साथ लेकर आवें तो मेरा भय दूर हो ज़ायगा। अफ़जलखां ने पहले-पहल जब यह सन्देश सुना तब उसे कुछ कपट की आशंका होने लगी। किन्तु कृष्णाजी के कहने से पूरा विश्वास हो गया।

निदान भेंट करने का समय और स्थान निश्चित किया गया। उस दिन शिवाजी ने अपने बचाव की सारी पोशाक पहन ली थी। दाहिने हाथ में तलवार और बायें हाथ के अन्दर बघनखा पहना। गढ़ के आस पास उन्होंने दो तीन हजार आदमियों को छिपा रखा था।

इधर खाँ साहब भेंट करने के लिये बड़े ठाठबाट से निकले। उनके साथ में पन्द्रह सौ हथियारबन्द

सिपाही थे। खाँ साहब बगल में कटार छिपाये हुये रखे थे।

निश्चित समय पर खाँ साहब दो एक आदमियों को लेकर शिवाजी से मिलने गये। उस समय के वार्तालाप का वर्णन इतिहास में बहुत अच्छा किया गया है। जब खां साहब डेरे पर आये तब शिवाजी ने सलाम किया। खां ने गोपीनाथ पन्त से बार बार पूछा—"क्या शिवाजी यही है?" फिर जब निश्चय हो गया तब शिवाजी से पूछा—"आप राज्य लूट कर किले बनाते हैं इसका क्या मतलब"? शिवाजी ने उत्तर दिया—"पहले ये देश और किले मुगलों के हाथ में थे। हम उन्हें दूर कर अपने हाथ में कर रहे हैं।" खान ने कहा—"अच्छा हुआ। अब आप सब किले स्वाधीन कर बीजापुर चलें।" शिवाजी बोले—"गुनाह माफ करने का फर्मान मुझे दें तो आपके हुक्म को पालूँ।" इस पर गोपीनाथ पंत बोले—"आप खाँ साहब के अख्तियार में इस समय हैं। आप उनसे मांफी मांगिये।" शिवाजी ने उत्तर दिया—हम शाह के अधिकार में हैं। हम किसी दूसरे से कैसे मांफी मांग सकते हैं। तब भी यदि आप कहते हैं तो उनसे माफी मांगने के लिये तैयार हैं।"

यह कह कर वे खान से मिलने के लिए आगे बढ़े। आलिंगन का ज्योंही समय आया, त्योंही खान ने शिवाजा पर खंजर से वार किया। फिर क्या था खान का अपराध पहला साबित हुआ। शिवाजी ने अपना बघनखा निकाला और खान के पेट में घुसेड़ दिया। फिर खाँ साहब ने अपनी तलवार से सिर पर वार करना चाहा पर इसमें वह सफल न हुआ। खान को गिरते देख गोपीनाथ पंत ने शिवाजी पर प्रहार किया। शिवाजी उससे बोले—"हम ब्राह्मण पर प्रहार नहीं करते इससे आप हट जायँ।"

जब अफजलखां के वध की खबर अली आदिलशाह को लगी तब वह बड़ा घबड़ाया। उसकी बेगम तो—"अल्लाह; खुदा" कहती हुई बेहोश होकर गिर पड़ी। सब अमीर उमराव यह कहने लगे कि अब तो मुसलमानों का राज्य गया। शिवाजी सारा देश कब्जे में किये ले रहा है। बादशाह और उसकी मां ने तीन दिन तक खाना नहीं खाया।

५—पिता पुत्र की भेट

शाहजी को बीजापुर सरकार के यहाँ नौकरी करते हुए बरसों बीत चुके थे। शिवाजी के यश और पराक्रम की चर्चा सुनकर पुत्र को देखने की उत्कंठा उनके मन में बहुत दिनों से हो रही थी। सन् १६६२ ई० में उनकी यह उत्कंठा प्रबल हो उठी। उन्होंने बादशाह से इसकी बादशाह आज्ञा: मांगीने। कहा "शाहजी, आपकी अवस्था मेरे यहाँ नौकरी करते बीत चुकी है। इस समय आप छोड़कर चले न जायँ। आपको पुत्रदर्शन की अनुमति देता हूँ। पर आप शिवाजी से जाकर मेरी ओर से कहें कि एक बार भेंट करने के लिये बीजापुर अवश्य आवे। पर यदि वह न भी आवे तो आप पुत्र प्रेम के कारण वहीं रह न जाइयेगा। आप की पतीचा सदा करता रहूँगा। इसे भूलियेगा नहीं।"

इस प्रकार बादशाह को अनुमति लेकर शाहजी अपने पुत्र से भेंट करने चले। शिवाजी ने खबर पाते ही पिताजी के स्वागत के लिये अच्छा इन्तजाम किया। उनके सामने आते ही शिवाजी ने उनके जूते उठाकर अपने सर रख लिये। फिर हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक कहा—"आप की आज्ञा के विरुद्ध मैंने बीजापुर सरकार

से विरोध किया है। इसके लिये आप जो दंड दें वह स्वीकार है।" इस पर शाहजी बोले—"तुम शिशोदिया कुल में उत्पन्न क्षत्रिय हो। तुमने अपने कुल के अनुकूल काम किया है। तुमने हिन्दूधर्म और हिन्दूजाति की रक्षा कर अपना ही नहीं वरन् हमारा भी यश बढ़ाया है। तुम्हारे ऐसे गुणी पुत्र को पाकर मैं कृतकृत्य हूँ।"

इसके बाद शिवाजी पिता को राजमहल में ले गये और जितना भी धन लूटा था सब दिखलाया। हरेक किले में लेजाकर उनका निरीक्षण करवाया। दिन रात वे उन्हीं के आदर सत्कार में व्यस्त रहे। उनको राज का सारा कामकाज भूल-सा गया। पिता का प्रेम विचित्र होता है।

इस प्रकार रहते-रहते जब कई दिन बीत गये तब शाहजी ने एक दिन लौट जाने के लिये कहा। शिवाजी ने उत्तर दिया—"आप की वृद्धावस्था है। आप फिर बीजापुराधीस के यहाँ क्यों जाते हैं। आप यहीं रह कर जीते हुए राज्य का उपभोग कीजिये।" इस पर शाहजी ने कहा—"मैंने सारा जन्म बीजापुर में नौकरी करते बिताया। अब अन्तिम समय में बीजापुर छोड़ना नहीं चाहता। इसलिये मुझे तुम जाने दो।" इस पर शिवाजी

ने बहुत से हीरे जवाहिरातों की भेंट दी और बहुत आदर के साथ विदा किया।

बीजापुर लौट कर उन्होंने सब भेंट बादशाह को दे दी। इसके दो वर्ष बाद ही शाहजी का देहान्त हो गया। इस बीच में शिवाजी ने बीजापुर पर कोई आक्रमण नहीं किया। पिता के मरने का दुःख उन्हें बहुत हुआ। उन्होंने कई दिन तक खाया नहीं। पिता की अन्त्येष्टि क्रिया उन्होंने बहुत दान-दक्षिणा के साथ की।

बीजापुर सरकार को परेशान कर शिवाजी का ध्यान मुगलों की ओर गया। मुगलों का राज्य काफी फैला हुआ था। ऐसे बड़े राज्य का शासन करना कोई खेल न था। औरङ्गजेब शिवाजी से बहुत शंकित था। अन्याय से लिया हुआ राज्य कितने दिनों तक टिक सकता! उसको सदा चिन्ता लगी रही कि उसे धोखा तो नहीं देता है। उसे अपने आदमियों पर विश्वास नहीं था। दक्षिण में शिवाजी का प्रताप बढ़ता देखकर वह बहुत घबड़ा रहा था। उसने शिवाजी को रोकने के लिये अपने एक विश्वस्त सरदार शाइस्ता खां को बड़ी भारी सेना के साथ दक्षिण भेजा।

शिवाजी आक्रमण कर मुगलों के किले पर किले

जीत रहे थे। शाइस्ताखां जब आया तब उसने एकबारगी शिवाजी पर आक्रमण करना उचित न समझा। ने सउ पूने पर चढ़ाई कर शिवाजी के किले पर कब्जा कर लिया। उसी में वह रहने भी लगा। उसको यह डर था कि शिवाजी अकस्मात् कहीं छापा न मार दें। इसलिए वह सदा सेना के साथ सतर्क रहता था उसको यह भी मालूम था कि शिवाजी सिंहगढ़ के किले में रहते हैं। उसको घेर कर शिवाजी को पकड़वाने का उपाय वह सोच रहा था।

शिवाजी सिंहगढ़ में रहकर शाइस्ताखां का यह तमाशा देख रहे थे। वे जानते थे कि खान के पास बड़ी भारी सेना है और लड़ाई में उससे मुठभेड़ करना बहुत कठिन है। वे भी इसी फिराक में थे कि किस तरह शाइस्ताखां को हरावें। आखिर दैवेच्छा से एक मार्ग सूझ गया।

शिवाजी ने पूने के दो ब्राह्मण खान के पास यह कहने के लिये भेजे कि वे बरात निकलवाने वाले हैं। बरात के साथ बाजा और कई आदमी रहेंगे। खान ने आज्ञा दे दी। शिवाजी डेढ़ हजार आदमियों के साथ बरात बना कर निकले। रास्ते में जगह जगह पर आदमी छोड़ते गये। यहाँ तक कि जब महल के पास

पहुँचे तब केवल पचीस आदमी रह गये।

महल का चक्कर लगाते समय शिवाजी को रसोई-घर नजर आया। उसमें के सब दीपक बुझे हुए थे। शिवाजी खिड़की के मार्ग से अन्दर जाने का प्रयत्न करने लगे। आहट पाते ही जनानखाने को औरतें जाग उठीं। उन लोगों ने खान को भी जगाया। खान घबड़ाकर उठा और नीचे उतरने लगा। इतने में शिवाजी की नजर उस पर गई। उसका पीछा कर तलवार से उस वार किया। उस वार से उसके हाथ की एक अँगुली कट गई। उसका लड़का अबदुल फतेहखाँ अपनी सेना के साथ दौड़ आया। पर शिवाजी भला उसके चंगुल मे कहां आने वाले थे। शाइस्ताखां के पराजित होने से उसकी सेना में हलचल मच गई और शिवाजो सुरक्षित सिंहगढ़ जा पहुँचे

ज़र्मनी का कूटराजनीतिज्ञ विस्मार्क भी शिवाजी की तरह अपनी चतुरता में बड़ा प्रसिद्ध हो गया है। उससे सारे राष्ट्र दहलते थे। न मालूम किस समय किस कूटनीति से एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र को भिड़ा दे। शिवाजी भा इसी प्रकार के राजनीतिज्ञ थे। पर वे अपनी नीति में धर्म का सदा ख्याल रखते थे।

एक बार किसी मौलाना मुहम्मद साहब की बहू

युद्ध में पकड़ ली गई थी। शिवाजी के सामने जब वह लाई गई तब उन्होंने उससे पूछा कि तुम्हारा पति कहाँ है। उसने अपने पति का नाम और स्थान बतलाया तब शिवाजी ने अपने सरदारों को आज्ञा दी कि उसको सुरक्षित उसके पति के पास पहुँचा दें। वह अतिशय लावण्यवती और रूपवती थी। कुछ लोगों ने शिवा जी से कहा—"आप इसे अपनी सेवा के लिये दासी रख लें तो बड़ा अच्छा हो।" शिवाजी को इस बात को सुनते ही बड़ा क्रोध आया। उनके लिये यह बिल्कुल असह्य था कि वे एक अबला से असद्व्यवहार करें।

एक वीर के लिये यह कार्य उचित नहीं है। किसी समय योरप के अन्दर भी सैकड़ों वीर तभी अपने को वीर समझते थे जब कि वे एक सुन्दर स्त्री को प्राण रक्षा करें। ऐसे वीर 'नाइट' श्रेणी में रखे जाते थे। उनका यह सिद्धान्त था कि सत्य बोलें, संसार से प्रेम करें तथा स्त्री जाति की सेवा तथा रक्षा करें। शिवाजी 'नाइट' से कम न थे उन्होंने अपने सरदार को आज्ञा दी कि ऐसी बात फिर कभी जबान से न निकालें।

———

६—जयसिंह से संधि—औरङ्गजेब के दर्बार में शिवाजी

शाइस्ताखां की पराजय होने पर शिवाजी और भी अधिक निडर हो गये। सन् १६६४ ई० में शिवाजी ने सूरत शहर को खूब लूटा। इसके बाद वे और भी शहरों में लूट-मार मचाने लगे। उन्होंने एक प्रण-सा कर लिया था कि औरङ्गजेब को सुख की नींद न सोने देंगे। वास्तव में वे उसके लिए 'पहाड़ी चूहे' का काम करते थे!

औरङ्गजेब ने फिर दो सरदारों को दक्षिण भेजा। एक थे जयपुर के राजा जयसिंह और दूसरे दिलेरखान। इन दोनों को साथ-साथ भेजने में भी औरङ्गजेब की एक चाल थी। बादशाह की असफलता का सब से मुख्य कारण यह था, कि वह किसी पर विश्वास नहीं करता था। जिस प्रकार उसने अपने बन्धुओं के साथ विश्वासघात किया था, उसी प्रकार वह औरों को भी विश्वासघाती समझता था। इसी कारण से उसने एक हिन्दू और एक मुसलमान को साथ-साथ भेजा, उसे यह डर था कि कहीं हिन्दू-हिन्दू मिल न जावें। उसने जाते समय दिलेरखान के कान में कहा कि "जयसिंह हिन्दू होने की वजह से कहीं शिवाजी

से मिल न जावे। इस बात का सदा ख्याल रखना।" बीजापुर के अली आदिलशाह को भी उसने सहायता के लिये एक पत्र भेजा।

सन् १६६५ ई० में दोनों सरदार दिल्ली से निकल कर औरङ्गाबाद पहुँचे। शिवाजी को इस आक्रमण की खबर मिलते ही वे रायगढ़ जा पहुँचे। वहाँ वे सलाह करने लगे कि शत्रु का किस तरह सामना किया जाय। यदि युद्ध किया जायगा तो सिवा हिन्दुओं के वध के विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यदि जयसिंह को बुला कर उन्हें हिन्दूधर्म का उपदेश देकर मिला लिया जाय तो साथ में दिलेरखान है। वह इस चाल को चलने न देगा। अन्त में यही निश्चय हुआ कि उन्हें जयसिंह से भेंट कर संधि करनी होगी।

जयसिंह ने अपना पड़ाव डाल कर विचार किया कि शिवाजी के साथ किस तरह का वर्ताव हो, शिवाजी से युद्ध करना उचित नहीं है। शिवाजी एक सत्कार्य में लगे हुये हैं। उसमें बाधा पहुँचाना एक हिन्दू का धर्म नहीं है। युद्ध में कहीं अफ़जलखान या शाइस्ताखान की सी हालत हुई तो और भी मुश्किल। यह सब सोच कर एक पत्र भेजा—"औरङ्गजेब बहुत बलवान् बादशाह है। उस से मित्रता करने में आपकी कुशल है। आपका हिन्दुओं

की रक्षा का कार्य बहुत उत्तम है। अपनी सत्ता कायम रखने के लिये यदि आप औरङ्गजेब से संधि कर लें तो आपका कोई नुक़सान न होगा। इस विषय में आप अपने विचार लिख भेजें।"

शिवाजी को जब जयसिंह का पत्र मिला तब उन्होंने हीरे जवाहरात नजर में देकर, रघुनाथ पंत के हाथ इस प्रकार जवाब भेजा—"आपका पत्र प्राप्त होते ही मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ। हिन्दू धर्म की रक्षा का कार्य बहुत ही उत्तम है। आपके विचार बहुत उच्च हैं, इसकी मुझे बड़ी ही प्रसन्नता है। मैं आपकी आज्ञा को टाल नहीं सकता। हम दोनों क्षत्रिय हैं। मुझे अपने पुत्र रामसिंह की तरह समझिये।"

रघुनाथ पन्त के हाथ से शिवाजी का पत्र पाकर जयसिंह फूले न समाये। उन्होंने बहुत सा नजराना दिया और दिलेरखाँ से भेंट करवाई। जयसिंह जब शिवाजी से भेंट करने की इच्छा प्रकट करने लगे, तब दिलेरखान बहुत बिगड़ा। उसने कहा—"आप क़िले जीतने आये हैं कि सन्धि करने? आप सिंहगढ़ सर करिये, मैं जाकर पुरन्दर जीतता हूँ यह कहकर वह बड़ी भारी सेना के साथ पुरन्दर क़िला जीतने गया। वहाँ जाकर उसने पूरी हार खाई। सारी सेना तहस-नहस हो गई। तब दिलेरखान

लज्जित होकर जयसिंह के पास आया और बोला—"आप शिवाजी का विश्वास दिलाकर भेंट करने के लिये बुला भेजें। मैंने तो प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक किला सर न कर लूँगा, तब तक सिर पर पगड़ा न रखूंगा।"

जयसिंह ने दिलेरखान के कहने के अनुसार शिवाजी को भेंट करने के लिये एक पत्र भेजा। शिवाजी पत्र पाकर बड़े ठाटबाट के साथ जयसिंह से भेंट करने चले। आधी दूर रास्ते में आकर जयसिंह ने हाथी से उतर कर उनकी अगवानो की। इसके बाद दोनों प्रेमपूर्वक मिले और साथ-साथ महल में गये। वहाँ जाने पर जयसिंह ने कहा कि दिलेरखान बादशाह का बड़ा विश्वासपात्र है। उससे भी आप भेंट कर लें तो बड़ा अच्छा हो। शिवाजी ने स्वीकार कर लिया। उससे भेंट कर शिवाजी ने कहा—"मेरे किले सब आप ही के हैं। मैं खाली बादशाह का नौकर हूँ। आप मेरी बादशाह से शिफारिस कर दें कि हमें नौकर रख लिया जाय तो बड़ी मेहरबानी हो। मैं आपके हाथ सब चाभियाँ सुपुर्द करता हूँ।" दिलेरखान चाभियों को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा--"जयसिंह बड़े हैं। वे जो करें सो ठीक ही है।"

दोनों ने यह निश्चय किया कि शिवाजी जीते हुए किले बादशाह को दे दें और बादशाह उन्हें दक्षिण का

जागीरदार बना दें। इसी आशय का पत्र जयसिंह ने बादशाह को भी लिखा। जयसिंह ने शिवाजी को बादशाह से मिलने का भी आमन्त्रण दिया और यह विश्वास दिलाया कि उनके साथ कोई विश्वासघात का कार्य न किया जायगा।

सन् १६६६ ई० में शिवाजी ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। राज्य का कारबार अपने मन्त्रियों पर सौंप दिया और निश्चन्त होकर वे दिल्ली की ओर चले। इस समय औरङ्गजेब आगरे में रहता था। अतएव वे दिल्ली न जाकर आगरे गये। बादशाह ने शिवाजी के स्वागत के लिये रामसिंह और एक दूसरे सरदार को भेजा। शिवाजी को यह बहुत बुरा लगा। पर वे कुछ बोले नहीं।

औरङ्गजेब ने शिवाजी के स्वागत की अच्छी तैयारी कर रखी थी। पर उसके मन में शिवाजी के प्रति वैर-भाव जागृत था, और वह उनका नाश करना चाहता था। इसका कारण भी था। शाइस्ताखाँ की स्त्री इस समय वहीं थी। उसको अपने पति का अपमान और पुत्रवध का बड़ा शोक था। उसने बादशाह के जनानखाने में जाकर शिवाजी की बड़ी निन्दा की और उन्हें मरवा डालने के लिये कहा। वे स्त्रियाँ जाकर औरङ्गजेब

से बोलीं—"एक स्त्री की दशा देखकर तुम्हें लज्जा नहीं आती ! तुम शीघ्र इस अपमान का बदला चुकाओ।" यह सुनकर उसे बदला लेने की इच्छा हुई।

रामसिंह ने बादशाह के पास जाकर भेंट करने का दिन तै किया। सन् १६६६ ई० की १२ मई को औरङ्गजेब की पचासवीं वर्षगांठ आ पड़ी। उसी दिन आगरा के दीवाने-आम में बड़ी शान शौकत के साथ जलसा मनाया गया। मीर मजलिस में सब एकत्रित हुए। बादशाह ने उस 'मराठा योद्धा' से अपने को बचाने के लिये सब साधन ठीक कर लिये थे। उस शाही दर्बार में 'पहाड़ी चूहे' के अलावा और किसी भी तरफ कोई नहीं देखता था। बादशाह खुद २००० सैनिकों से घिरा हुआ था। शिवाजी को देखने के लिये जनानखाने की स्त्रियाँ भी पर्दे में बैठी हुई थीं।

शिवाजी की वेषभूषा बादशाह को पसन्द न आई। बादशाह ने शिवाजी को हाथ जोड़े हुये पंचहजारी उमरावों के बीच में खड़ा किया। यह शिवाजी को सहन न हुआ। उनका मुख मारे क्रोध के तमतमा उठा। वे बादशाह की इस धृष्टता को देखकर अवाक् रह गये। मारे क्रोध के वे दूसरे कमरे में चले गये और बड़ी मुश्किल से उनका क्रोध शान्त हुआ। बादशाह ने रामसिंह को हुक्म

किया कि वे शिवाजी को डेरे पर ले जावें।

इसके बाद फिर कभी दोनों की भेंट का प्रसंग नहीं आया। औरङ्गजेब शिवाजी को वहीं रोक लेना चाहता था। दक्षिण का राज्य उसके पुत्र को सौंपकर शिवाजी को अपने पास जागीरदार बनाना चाहता था। शिवाजी को यह बात बिलकुल पसन्द न आई। उन्होंने बादशाह से जाने की आज्ञा मांगी। औरङ्गजेब ने इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। केवल टालमटोल करता गया। बार-बार आज्ञा मांगने का परिणाम यह हुआ कि अन्त में शिवाजी की हवेली के चारों ओर पांच हजार आदमी पहरा देने लगे।

शिवाजी ने जब यह देखा कि औरङ्गजेब उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं है, तब उन्होंने बादशाह के पास कहला भेजा—"हमारे साथ के आये हुए लोग उत्तर हिन्दुस्तान की आबहवा सहन नहीं कर सकते। इसलिए वे बार बार बीमार पड़ते जाते हैं। आप उनको तो घर जाने की आज्ञा दे दें।" बादशाह ने आज्ञा दे दी।

अब शिवाजी अपने को मुक्त करने का उपाय निकालने लगे। उन्होंने बादशाह से कहला भेजा—"हमें जब इसी दरबार में रहना है तो हम यह चाहते हैं कि अमीर उमरावों से अपना परिचय बढ़ावें।" बादशाह ने

आज्ञा दे दी। अब शिवाजी रामसिंह को साथ ले उनसे भेंट करने जाने लगे। हर सप्ताह मिठाई की पेटियाँ भेंट में भेजने लगे। पहले तो उन पेटियों की बड़ी जाँच पड़-ताल होती थी पर धीरे धीरे एक दो देखकर बाकी वैसे ही जाने दी जाने लगीं।

इस प्रकार जब कई महीने बीत गये तब उन्होंने अपने और भी नौकर चाकरों को घर भेज दिया। दो एक विश्वासी आदमी और अपने पुत्र को छोड़ कर सब को भेज दिया। एक दिन शिवाजी ने रात में अपने एक विश्वासी सेवक को अपनी पोशाक पहना कर अपनी जगह सुला दिया। फिर आप और अपने पुत्र को पेटी में बैठा कर बाहर पहुँच गये। बाहर आने के बाद घोड़े पर चढ़ कर अपने पुत्र के साथ मथुरा पहुँचे। वहाँ अपने पुत्र को छोड़ दिया और आपने संन्यासी का वेष धारण किया। इसी वेष में यात्रा करते हुए वे घर पहुँचे। घर पहुँचने पर उन्होंने अपने पुत्र को भी बुला लिया।

इधर जब शिवाजी बड़ी देर तक न उठे तब पहरे-दारों में बड़ा तहलका मचा। वह सेवक भी डाक्टर को बुलाने के बहाने बाहर चला गया। शिवाजी के कमरे का दरवाजा खोला गया। जब शिवाजी वहां न मिले, तब बड़ा शोर मचा। औरङ्गजेब को जब यह खबर मिली;

तब उसके काटो तो खून नहीं। चारों ओर शिवाजी को पकड़ने के लिये सिपाही भेजे गये। शिवाजी को पकड़ना कोई हँसी खेल न था। निराश होकर वे सब लौट आये। रामसिंह को दोषी ठहरा कर उसकी जागीर छीन ली गई। हाथ लगा हुआ 'पहाड़ी चूहा' खिसक के निकल गया।

इस 'आगरे की भेंट' में एक प्रेम-कथा भी अन्तर्हित है। औरङ्गजेब की २७ वर्ष की एक अविवाहित निसा-बेगम नाम की लड़की थी। वह शिवाजी को देखकर उन पर मोहित हो गई। उसने प्रण कर लिया कि यदि विवाह होगा तो शिवाजी से नहीं तो जन्मभर अविवाहित रहूँगी। बादशाह को जब यह खबर लगी तब उसने शिवाजी को कहला भेजा कि यदि आप मुसलमान हो जायँ तो आपका निकाह हो जाय। शिवाजी ने इन्कार कर दिया। इस पर भी निसा अपने प्रेम में दृढ़ रही। अविवाहिता रहकर १७०२ ई० में मरी। उसने सम्भाजी पुत्र शाहू को अपना नाती मान लिया और उसको अपने पास रखा।

७—शिवाजी और भूषण कवि

शिवाजी जिस प्रकार वीर थे उसी प्रकार कवियों और विद्वानों का आदर करते थे। महान् पुरुषों में यह बात प्रायः देखी जाती है। अलक्षेन्द्र ने विश्वविजयी होकर एक शहर पर धावा किया। वहाँ एक महाकवि 'पिंडार' रहता था। उसने अलक्षेन्द्र और उसकी सेना को अपनी कविता सुनाई। उसकी कविता का ऐसा प्रभाव पड़ा कि अलक्षेन्द्र उस शहर पर विजय प्राप्त करना छोड़ दिया। उसने कहा—"जिस शहर में पिंडार ऐसे कवि रहते हैं वह शहर धन्य है। उसको जो नष्ट करेगा उससे बढ़ कर नीच कोई हो ही नहीं सकता।"

सन् १६६८ ई० में भूषण शिवाजी के राज्य में पहुँचे। भूषण हिन्दी के कवि थे। धनाभाव के कारण वे पहिले औरङ्गजेब के दरबार में गये। वहाँ उनको काफी सन्मान प्राप्त हुआ। औरङ्गजेब उन्हीं से अकसर अपनी प्रशंसा करवाता था। पर थोड़े ही समय में वह भूषण पर क्रुद्ध हो गया। उसने आज्ञा दी कि हमारे यहाँ से निकल जाओ। भूषण चुपचाप चल दिये और दक्षिण जा पहुँचे।

रायगढ़ के पास पहुँच कर भूषण थक गये। संध्या

समय जाकर एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगे। इतने में एक प्रतापी पुरुष घोड़े पर सवार होकर उधर आ निकला। उसने भूषण से वहाँ आने का अभिप्राय पूछा। भूषण ने कहा—"मैं छत्रपति महाराज शिवाजी के दरबार में जाना चाहता हूँ और कुछ कवि प्रशस्ति भी करना चाहता हूँ। उसने कहा—"कुछ शिवाजी की प्रशंसा के कवित्त मुझे भी सुनाइये।" इस पर भूषण ने शिवराज विजय का ५६वाँ छन्द सुनाया जो इस प्रकार है :

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रवाह पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदण्ड पर चीता मृगझुण्ड पर,
भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है।

भाव यह है कि जिस प्रकार इन्द्र जम्भ राक्षस पर है, बडवानल समुद्र में है, रामचन्द्र जी रावण पर हैं, हवा बादलों पर है, शंकरजी कामदेव पर हैं, परशुराम सहस बाहु पर हैं, बन के वृक्षों के लिये जिस प्रकार दावाग्नि है और वन्य पशुओं के लिये जिस प्रकार चीता है, सूर्य

अन्धकार पर है, कृष्णजी कंस पर हैं, उसी प्रकार म्लेच्छों पर शिवाजी हैं। वे सदा म्लेच्छ वंश को दाबे रहते हैं।

उस पुरुष ने इस छन्द को सुना और बार-बार सुना। भूषण ने इस छन्द को ५२ बार कहा। इसके बाद वे थक गये और आगे कहने से इन्कार कर दिया। तब यह कहकर कि "कल शिवाजी महाराज के दरबार में आइयेगा। मैं वहीं मिलूंगा" वह व्यक्ति चला गया। दूसरे दिन जब भूषण ने दरबार में जाकर उसी पुरुष को सिंहासन पर बैठा देखा तब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। भूषण को देखते ही शिवाजी उठ खड़े हुए और बोले—"आप ही ऐसे वीर कवि की हमारे यहाँ आवश्यकता थी।" यह कह कर शिवाजी ने उनको ५२ लाख रुपये ५२ हाथी और ५२ गाँव दिये। भूषण वहीं सुख से रहने लगे। छै सात वर्ष बाद वे घर लौटे। फिर शिवाजी के अन्त समय तक उनके दरबार में आते रहे। उन्होंने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवराज-भूषण' और शिवा-बावनी' नाम के दो ग्रन्थ लिखे। उदाहरण स्वरूप इनके कुछ छन्द दिये जाते हैं :—

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की,
सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है।

साहि के सपूत सिव साहि के वदन पर,
सिव की कथान मैं सनेह झलकत है।
भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सो लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा के दृगन उछाह छलकत है।
दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नाचे रुण्ड मुण्ड फरके।
भूषन भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके।
भारे सुनि सुभट पनारे वारे उद्भट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़धर के।
बीजापुर वीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाडिम से दरके।

८—शिवाजी का अन्त

औरङ्गजेब के यहाँ से लौटने के बाद शिवाजी ने फिर किले जीतना शुरू किया। सन् १६७० ई० में सिंहगढ़ का किला बड़ी ही वीरता के साथ लिया। १६७२ ई० में सूरत शहर को फिर से लूटा। बीजापुर के बादशाह

से भी वे लड़ते रहे। सन् १६७४ ई० में बड़े धूमधाम के साथ शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। शिवाजी का अन्तिम समय मुगलों तथा अंग्रेजों से युद्ध करते बीता। सन् १६८० ई० में वे बीमार पड़े जिससे फिर वे उठे नहीं।

जब शिवाजी का अन्तकाल आया तब उन्होंने विश्वासी सामन्तों को बुलाकर कहा—"हमारा अब अन्त समय आ गया है। पिता की चालीस हजार की जागीर बढ़ाकर मैंने एक करोड़ की जागीर कर दी। अब इसके बाद क्या होगा इसका पता नहीं, मुझे अपने पुत्रों से कोई आशा नहीं है। यदि हम बड़े पुत्र को गद्दी देते हैं तो बाकी आपस में लड़ेंगे। यदि राज्य बाँट देते हैं तो जीता हुआ राज्य नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। मेरे बाद औरङ्गजेब जो कुछ करे सो थोड़ा है। मुझे बहुत कम आशा है कि मेरे बाद इस राज्य को कोई चला सकेगा।"

यह सुनकर सामन्तों के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। उन्होंने शिवाजी को आश्वासन दिया कि उनके बाद भी वे राज्य कायम रखेंगे। जब चित्त को शान्ति मिली तब शिवाजी ने स्नान किया। गोदान आदि किया। इसके बाद श्रीराम नाम का जप करने लगे। जप करते करते ५ एप्रिल सन् १६८० ई० को उन्होंने देह त्याग किया।

शिवाजी किस धैर्य और उत्साह के साथ काम करते थे

और किन उच्च आदर्शों को सामने रखकर चलते थे इसका पता उनके उस पत्र से चलता है जो उन्होंने अपने सौतेले भाई वेकोजी को लिखा था। वह पत्र इस प्रकार है :—

"बहुत दिनों से तुम्हारे पास से कोई पत्र नहीं आया, इसलिये मैं बहुत चिन्तित हूँ। रघुनन्त ने मेरे पास लिखा है, कि तुम दुःख और चिन्ता को अपने सामने सदा रखकर अपनी सुध भूल गये हो। न तो तुम उपवास करते हो न धार्मिक उत्सव। तुम्हारी सेना निश्चल है, और तुम राजकाज छोड़ बैठे हो। तुम वैरागी हो गये हो और सिवा किसी पवित्र स्थान में बैठकर समय बिताने के और कुछ नहीं सोचते। इस तरह मेरे पास तुम्हारे बारे में बहुत कुछ लिखा गया है, और तुम्हारी इस दशा ने मुझे सोच में डाल दिया है।

"मुझे बड़ा आश्चर्य होता है जब मैं देखता हूँ कि तुम्हारे सामने मेरे पिता का आदर्श है—किस प्रकार उन्होंने कठिनाइयों का सामना किया और उन पर विजय प्राप्त की, किस प्रकार बड़े-बड़े कार्य किये, किस दृढ़ता के साथ बड़ी-बड़ी आपत्तियों का सामना किया और अन्त में किस तरह अखण्ड यश प्राप्त किया। उन्होंने जो कुछ किया वह सब तुम्हें विदित ही है। तुमने उनका सत्संग

किया और तुम्हें उनकी बुद्धिमत्ता और कार्य-कुशलता से लाभ उठाने का अच्छा अवसर था। तुम खुद ही जानते हो कि मैंने किस बुद्धिमत्ता के साथ इस राज्य की स्थापना की है।"

"जब तुम्हारे सामने इतने आदर्श हैं, तब क्यों तुम सांसारिक कार्यों को छोड़कर वैरागी हो रहे हो, अपनी जायदाद बरबाद कर रहे हो और अपना शरीर नष्ट कर रहे हो। यह किस तरह की बुद्धिमानी है और यह तुम्हें कहाँ ले जायगी। मैं तुम्हारा हितैषी और संरक्षक हूँ, तुम्हें मुझसे भय खाने की कोई आवश्यकता नहीं इसलिए यह सब छोड़ दो और वैरागी मत बनो। चिन्ता छोड़ो। अपनी प्रजा के कार्य-भार की देख-रेख करो, अपनी सेना को तैयार करो और सामयिक कार्यों की ओर अपना ध्यान दो। अपने आदमियों से काम लो और यश और प्रशंसा को प्राप्त करो। मुझे अपने छोटे भाई की और प्रशंसा सुनने के अलावा और क्या सुख हो सकता है। तुम्हारे पास रघुनाथ पन्त रहते हैं। वे कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं हैं, कठिन कामों में उनकी सलाह अवश्य लो। मैंने उन पर अपना विश्वास रखा है। तुम भी वही करो। आपस में एक दूसरे की सहायता करने से नाम होगा।"

"सबसे ज्यादा ध्यान देने की बात यह है कि तुम आलसी मत बनो। यह महान् कार्यों के करने का समय है। वैराग्य वृद्धावस्था में लिया जाता है। उठो! अपने को सचेत बनाओ। मुझे देखना है कि तुम क्या करते हो। और अधिक क्या लिखूं। तुम खुद ही बुद्धिमान हो।

यह पत्र ऐतिहासिक पत्रों में से है और अकर्मण्यों को भी कर्मण्य बना देता है। शिवाजी जिस पथ के पथिक थे उस पर बहुत कम वीरों की गति है।

६—शिवाजी का चरित्र

जन्म से लेकर अन्त तक शिवाजी की गाथा हो चुकी है। अब यदि उनके चरित्र पर थोड़ा ध्यान दिया जाय तो अच्छा हो। किसी भी पुरुष की जीवनी, केवल मुख्य-मुख्य घटनाओं का निर्देश कर देने से पूर्ण नहीं होती। उसका चरित्र ही उसके महत्व का प्रकाशक होता है। किसी भी पुरुष के बड़े-बड़े कार्य समय के प्रवाह में विलीन हो जाते हैं। परन्तु उसका चरित्र सदा स्थिर रहता और दूसरों के हृदय में स्फूर्ति संचार करता है।

शिवाजी रंग के गोरे शरीर के पतले दुबले थे। उनका कद छोटा और सुन्दर था। शरीर में बल और

चेहरे पर प्रकाश था। आकार से वे एक लोकोत्तर पुरुष मालूम होते थे। बड़े आदमियों में जो गुण आवश्यक होते हैं वह सब उनमें थे। सब प्रकार के संकट सहने और एक विचित्र स्थिति में रहने से उन्हें जगत् का बड़ा अनुभव प्राप्त हुआ था। माता का बड़ा आदर करते थे और उसकी आज्ञा के बाहर वे कभी नहीं जाते थे।

शिवाजी पर जो 'कपटी' होने का आरोप किया गया है वह ठीक नहीं जँचता। यदि राजनीति में चाल चलना ही कपट कहलाता है तो बहुत से पाश्चात्य 'डिप्लोमेट' कपटियों की श्रेणी में आ जायेंगे। जहाँ तक व्यक्तित्व का सम्बन्ध है वहाँ तक शिवाजी बड़े दयालु और धर्म-भीरु थे। उनमें लोभ जरा भी न था।

लूटमार मचाकर भी वे कभी प्रजा को कष्ट नहीं देते थे। स्त्रियों का वे बड़ा आदर करते थे। यदि मुसलमान स्त्रियाँ भी पकड़ ली जाती थीं तो वे उनको उनके पति के पास भिजवा देते थे। वे सब से प्रसन्न होकर बात करते थे जिससे वे सब को आकर्षित कर लेते थे।

शिवाजी में सबसे बड़ा गुण यह था कि वे गुणों का आदर करते थे। भूषण के सम्बन्ध में हम पहले ही लिख आये हैं। नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि सन्तों का वे बड़ा आदर करते थे। उनका हमेशा यह प्रयत्न रहता था

कि वे सन्तों के सत्संग से लाभ उठावें। ये सन्त स्थान स्थान पर हिन्दू-संगठन और भगवद्भक्ति के व्याख्यान दिया करते थे। शिवाजी भी अक्सर वेष बदलकर उनके व्याख्यान सुनने जाया करते थे।

एक बार की बात है कि पूने के रहने वालों ने तुकाराम जी को अपने यहाँ बुलाया और उनका घर घर कीर्तन कराने लगे। उस समय शिवाजी सिंहगढ़ पर रहते थे। वे रोज़ रात को गढ़ से उतरकर कीर्तन सुनने पूने आ जाया करते थे। यह खबर कुछ पठान सरदारों को लगी। एक दिन शिवाजी एक बनिये के यहाँ कथा सुनने आने वाले थे। पठान सरदार ने २००० पठानों को शिवाजी को पकड़ लाने के लिये बनिया के यहाँ भेजा। उन्होंने जाकर बनिया के घर को घेर लिया। यह देखकर कीर्तन सुनने वालों में खलबली मच गई। तुका-रामजी को जब इस घेरे का कारण मालूम हुआ तब उन्होंने सब से कहा—"आप को कीर्तन से भाग जाना उचित नहीं है। आज एकादशी है। यदि आज हरिकथा सुनते सुनते मर भी गये तो मुक्ति अवश्य मिलेगी, आप लोग जहाँ बैठे हैं बैठे रहिये"। तुकारामजी का यह व्या-ख्यान सुनकर सब जहाँ के तहाँ बैठे रहे। शिवाजी भी अपनी जगह से हटे नहीं। इतने में शिवाजी के एक

विश्वासपात्र नौकर ने उनके पास आकर कहा—"महाराज, आप अपनी वर्दी दे दें। मैं उसको पहन कर घोड़े पर जाता हूँ। मुझे देखते ही यह पठान सरदार मेरा पीछा करने लगेंगे। मैं इनको ऐसे मार्ग से ले जाऊँगा कि ये मेरा पता न पा सकेंगे।" शिवाजी ने यह सुनकर उसको अपनी पोशाक दे दी। वह घोड़े पर निकल कर भगा। पठान सेना ने उसका पीछा किया; परन्तु वह चक्कर काटता हुआ रास्ते में एक पेड़ के नीचे जाकर छिप गया। पठान सैनिक उसकी तलाश में ही हैरान रहे। इसी बीच में शिवाजी वहाँ से हट कर सिंहगढ़ चल दिये।

ऐसे महापुरुषों की तुलना संसार के किन वीरों के साथ हो सकती है? पाश्चात्य विद्वानों ने शिवाजी की तुलना साधारणतया हैदर और यशवंत होलकर से की है। पर यह असंगत जान पड़ती है। हैदर लूट मचाकर दूसरों के स्वातन्त्र्य का अपहरण करता था। शिवाजी अपनी स्वतन्त्रता चाहते थे और उनका मुख्य उद्देश्य प्रजा को सुख पहुँचाना था।

नेपोलियन और सिकन्दर से शिवाजी की तुलना कई विषयों में की जा सकती है। उनका क्षेत्र जरा विस्तृत होने की वजह से वे शिवाजी से कुछ बड़े प्रतीत होते हैं। बाबर और शिवाजी में कई बातों का साम्य है।

दोनों ने पिता के हाथ से गये हुये राज्य को प्राप्त किया। दोनों बड़े शूरवीर और साहसी थे। दोनों ने अपना अपना साम्राज्य स्थापित किया। दोनों अल्पायु रहे। दोनों बड़े मातृभक्त थे पर अन्तर इतना ही है कि जहाँ शिवाजी स्वराज्य के लिये लड़ते थे। वहाँ बाबर परराज्य के लिए लड़ता था।

शिवाजी उस कोटि के महापुरुष थे जिसमें स्वतन्त्रता देवी के लिए आत्म-बलिदान करने वाले बड़े बड़े वीर हो गये हैं। इनको स्वदेश और स्वजाति का अभिमान था और इसीलिये परतंत्रता की बेड़ी में जकड़े हुए भारत को ये मुक्त करना चाहते थे। वे अपनी लगन के बड़े पक्के थे इसी कारण चारों ओर प्रबल शत्रु राज्यों से घिरे हुए होने पर भी अपने जीवन के अल्पकाल में एक आदर्श राज्य स्थापित कर सके।
